



प्रदूषित शैक्षिक-संस्कृति : एक अवरोध

* डॉ. जितेन्द्र लोढ़ा

व्याख्याता-शिक्षा

राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, कालाडेरा (जयपुर)

प्राप्त किया - 15 फरवरी 2017, संशोधन किया - 22 फरवरी, स्वीकृत किया - 28 फरवरी 2017

सार-संक्षेप

मुख्य रेखांकित पद- शैक्षिक संस्कृति, शैक्षिक-संस्कृति का अपघटन, मूल्यों के आलोक में वर्तमान की शैक्षिक अपेक्षाएं



[International Educational Journal is licensed Based on a work at www.echetana.com](http://www.echetana.com)

प्रस्तुत आलेख में शैक्षिक-संस्कृति की मूलभूत अवधारणा की सूक्ष्म व्याख्या की गई है और वर्तमान में शैक्षिक-संस्कृति के पर्यावरण में आये प्रदूषणों के कारणों को तलाशने की कोशिश की गई है। पत्र के माध्यम से यह सिद्ध करने का प्रयास किया गया है कि शिक्षा सांस्कृतिक दृष्टि से विकास, शोधन, परिवर्तन, अग्रगण्य, जागरूकता एवं उत्तरदायित्वपूर्ण प्रकृति का एक विशिष्ट साधन है, बतौर-ए-साधन उसकी अपनी संस्कृति है, जो समाज से भी प्रभावित होती है। यदि साधन के तौर पर शिक्षा कमजोर व प्रदूषित है तो उसकी सामाजिक भूमिकाएं स्वभाव में ही कमजोर होगी। समाज के वर्तमान पर्यावरण को देखते हुए शिक्षा के स्रोत के माध्यम व स्वरूप जो प्रत्यक्ष हुए हैं, उनके चलते सांस्कृतिक-प्रदूषण विरासत में मिल गया है, इसलिए भूमिकाओं के तौर पर शिक्षा के नये क्षितिज की पड़ताल करना वर्तमान की महती आवश्यकता बन गया है, अतः जरूरी है कि ज्ञान-विज्ञान के हर क्षेत्र से शिक्षा व समाज के आवश्यक मूल्यों के विकास की रणनीति निर्धारित की जाए...

विषयपरक-पृष्ठभूमि

शिक्षा एक सामाजिक संकल्पना एवं दायित्व है, उसकी अपनी प्रकृति है, उसकी अपनी 'संस्कृति' है, उसमें विकृति न आए, इसलिए उसे वैयक्तिकता, निज स्वार्थ, लाभ आधारित उत्पाद, उपयोगिता और प्रतिफल की कसौटी पर रखना किसी लोक हितकारी राज्य की परिकल्पना के विपरीत होगा। आज हम सभी के लिए आश्चर्य और क्षोभ का विषय है कि शिक्षा को एक अनुर्वरक विषय (नॉन मेरिट) माना जा रहा है। ऐसा करके हम न केवल शिक्षा के व्यापक संदर्भों एवं उससे जुड़े संवेदनशील मुद्दों को नजरअंदाज कर रहे हैं, बल्कि उसके संरचनावादी-दृष्टिकोण को नष्ट कर उसकी अपनी संस्कृति में अनवरत प्रदूषण के बीज बो रहे हैं। दरअसल शिक्षा रोजमर्रा के उपयोग की वस्तु नहीं है, बल्कि यह

मनुष्य की एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक प्रवहमान् जीवन का स्पंदन है, इसलिए शिक्षा का स्वरूप पूरी सावधानी की मांग करता है, उसे पल-पल गिरती-उठती प्रवृत्तियों के भरोसे नहीं छोड़ा जा सकता, शैक्षिक-निर्णयों में पूरे समाज की भागीदारी आवश्यक है। सुन्दर एवं स्वस्थ समाज का निर्माण शिक्षा के स्वरूप, संस्कृति एवं उसकी प्राप्ति स्रोतों पर निर्भर करता है, इसलिए हमें शिक्षा की प्रकृति एवं संस्कृति से जुड़े हुए इन मूल एवं शाश्वत प्रश्नों पर गम्भीरता एवं प्राथमिकता के साथ विचार करना चाहिए कि शिक्षा अपने सामाजिक सरोकारों को पूर्ण कर रही है या नहीं, क्या शिक्षा मनुष्य की अन्तर्निहित रचनात्मकता, सृजनात्मक उच्चता, शाश्वत मूल्यों एवं आवश्यक विचारों को संचारित एवं सर्वोद्दिष्ट करने वाली है? क्या शिक्षा मानवीय सभ्यता को उसकी वस्तुगत स्थितियों यथा प्रकृति, संस्कृति, मानक, मूल्य, समाज एवं स्वयं के अस्तित्व के पारस्परिक अन्तःनिर्भरता, अन्तसंबंध एवं उनको अन्तर्ग्रथित करने वाले आधारभूत वैज्ञानिक कारकों एवं नियमों को समझने की क्षमता रखती है। यदि शिक्षा व उसका स्वरूप मनुष्य को उसके अस्तित्व एवं उसके निर्धारित कारकों को समझने, अनुभव करने या आवश्यक ज्ञान के साथ तालमेल स्थापित करने का सूत्र नहीं बनती है, तो ऐसी शिक्षा निरर्थक एवं किसी भी समाज के लिए हानिकारक साबित होगी। शायद इसलिए ही महान दार्शनिक तोलस्तोय ने एकदम समीचीन कहा है कि— शिक्षा उन सभी वस्तुनिष्ठ प्रभावों की समष्टि है, जो मनुष्य द्वारा स्वयं के अस्तित्व को बनाए रखने हेतु किए गये जाने संघर्ष का सामाजिक परिणाम है।

शिक्षा अपनी मूल प्रकृति व सांस्कृतिक स्वरूप में एक सामाजिक सेवा है, जिसके अपने हितधारी हैं, उनकी आशाओं व आकांक्षाओं के अनुरूप उसे अपना स्वरूप निर्धारित करना होता है। इस सबके बावजूद शिक्षा के संदर्भों में विकास, परिवर्तन, शोधन, अग्रगण्य, सुधार, अनुगमन, प्रेरणा, सकारात्मकता, जागरूकता, संरक्षण एवं जिम्मेदारी जैसे घटक उसकी निज प्रकृति व संस्कृति के मूलाधार हैं, अतः नीति, न्याय, निर्णय, मानक एवं मूल्य उसकी प्रत्यक्ष पहचान हैं। शिक्षा की प्रकृति व उसकी संस्कृति का समागम करने के पश्चात यह तथ्य तो दिन के उजाले की तरह साफ़ है कि मानवीय-धाराओं में शिक्षा की भूमिका महत्वपूर्ण एवं व्यापक है, अपने व्यापक संदर्भों में शिक्षा सुधार, विकास एवं बदलाव का महत्वपूर्ण कारक है। सर्वविदित है कि समाज में आये बिगड़ावों, रिसावों एवं गिरावटों से उबरने का मार्ग व माध्यम “शिक्षा” है। यह सत्य भी है, ऐसा सब मानते भी हैं, यही शिक्षा की संस्कृति भी है। यहाँ यक्ष प्रश्न यह है कि विकास व सुधार की सफल गामनी शिक्षा विगत कुछ दशकों से स्वयं अपने सुधार की अभिलाषी है, तो वह अपनी शाश्वत भूमिकाओं को कैसे निभा पायेगी, अर्थात् समाज के गिरते मानकों को कैसे उठा पायेगी? स्पष्ट है, बीमार व प्रदूषित साधन से हम बदलाव व विकास की अपेक्षा कैसे कर सकते हैं? इस संबंध में सुप्रसिद्ध साहित्यकार व वरिष्ठ पत्रकार मृणाल पाण्डे की शैक्षिक-संस्कृति के बिगड़े रूप पर की गयी यह टिप्पणी, शिक्षा के वर्तमान स्वरूप को यथारूप में प्रकट करती है— नकलची ज्ञान, निपट सरलीकरण एवं ज्ञानार्थ संदर्भों के अवमूल्यन जैसे वातावरण ने आज शिक्षा के नाम पर आयातित माल बेचने वाली बेदिमाग शैक्षिक-फैक्ट्रियाँ पैदा करता जा रहा है, जिनकी न कोई दशा है न

दिशा है। हमने हमारी शिक्षा को उसकी मूल संस्कृति के विपरीत प्रतिभा-विमुख, तोतारटंत परीक्षा के प्रतिशतांकों तक सीमित कर डाला है।²

शैक्षिक-संस्कृति के मायने

संस्कृति का शाब्दिक अर्थ-“उत्तम व सुधरी हुई स्थिति” है, अर्थात् किसी वस्तु या सेवा की प्रकृति को यहां तक परिष्कृत करना कि उसका अन्तिम उत्पाद सरोकारित वर्ग की प्रशंसा व सम्मान प्राप्त कर सके, उसे संतुष्ट कर सके। किसी भी संस्कृति का वर्तमान रूप किसी समाज के दीर्घकाल तक अपनायी गयी पद्धतियां का परिणाम है, वस्तुतः संस्कृति जीवन की एक विधि है, जो जीवन के स्वीकृत मानकों पर आधारित होती है। शिक्षा, संस्कृति का प्रकट पक्ष है, इसलिए शिक्षा स्वयं भी संस्कृति का एक स्वरूप है, जिसमें सर्वस्वीकृत शैक्षिक-मूल्य, मानक एवं उसके दायित्व शामिल है। चूंकि संस्कृति का संबंध व्यक्ति व समाज में प्रचलित भौतिक व अभौतिक संस्कारों से है, जो एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को दिये जाते हैं, और इन संस्कारों में शोधन, विकास एवं हस्तांतरण का दायित्व शिक्षा का है, अतः शिक्षा में संस्कार स्वयमागत अवधारणा है। शिक्षा वह प्रक्रिया है, जो एक ओर वर्तमान की स्थितियों व भावी स्वरूपों से प्रभावित होती है या बदलती है, वही उस समाज की संस्कृति से भी प्रभावित होती है, इसलिए शैक्षिक-संस्कृति एक विकासशील प्रक्रिया है, जिसमें आवश्यक मूल्यों व मानकों को जोड़ा जाता है, तथा अनावश्यक व अनैतिक को छोड़ा जाता है।³

इस प्रकार शैक्षिक-संस्कृति में शिक्षा के निज-मूल्य, मानक एवं उसके दायित्वगामी कार्य शामिल है, अर्थात् शैक्षिक-संस्कृति समाज के गतिशील व स्वीकृत व्यवहारों (मूल्यों) को मान्यता व तरीके प्रदान करती है- इसलिए शैक्षिक-संस्कृति की अपनी एक आचार संहिता होती है, जो विकासगामी, नीतिपरक, शोधक एवं मार्गदर्शी स्वरूप में शिक्षा को प्रबंधित करती है। शैक्षिक-संस्कृति के सारे प्रतिमान संरचनावादी, सतत एवं प्रगतिशील विकास के पर्याय है, इसलिए शैक्षिक-संस्कृति स्वयंमेव उचित क्या है? अनुचित क्या है, का एक निर्णय है, जो स्वयं उस पर भी लागू होता है तथा प्रचलित मानवीय-सम्भ्यता के आचरण पर भी लागू होता है। शैक्षिक-संस्कृति प्रतिफल है, ऐसी जीवन-व्यवस्था की, जो जीवन को स्वीकृत-विचारों, आदर्शों मूल्यों, भावनाओं, विश्वासों एवं विधिक उपागमों से सतत प्रबंधित करती है। सारभाव में यह कह सकते हैं कि शैक्षिक-संस्कृति विचार नहीं, क्रांति व बदलाव के बीज है, व्यवहार की मानक है, जीवन-व्यवस्था की विधान है, अंत में लेकिन अंतिम नहीं, विकास एवं शुभताओं में अक्षय संवर्द्धन भी है।⁴

शैक्षिक-संस्कृति के प्रतिमानों में आई गिरावट

बाजारवाद व शिक्षा में फटाफटी के इस दौर में सकारात्मक बदलाव की अग्रगामी साधन “शिक्षा” आज अपनी संस्कृति से ज्यादा अपनी विकृति के लिए जानी जा रही है। उत्थान वाली भूमिका की पर्याय शिक्षा, आज स्वयं अपने स्वभावगत स्वरूप में बीमारू व असहाय महसूस कर रही है।

क्रांतिकारी बदलावों की बीज आज अपने में क्रांतिकारी बदलाव की अपेक्षा रख रही है। असल में हमारी शिक्षा पहले धर्म के शिकंजे में रही, अब सत्ता और व्यापारियों ने उसे हथिया लिया है, इसलिए शिक्षा को अपनी मूल संस्कृति, मानक व मूल्यों पर जाने-अंजाने चलने का मौका ही नहीं मिल रहा है। शिक्षा के हलकों में व्याप्त भ्रष्टाचार, प्रतिस्पर्धा, लाभवाद, अविवेकशील-प्रसार, बाज़ारीकरण एवं आधुनिकीकरण की आड़ में आज शैक्षिक-मूल्य एवं दायित्व तार-तार हो रहे हैं। जब शिक्षा के उद्देश्य स्वार्थपूर्ण कारोबार के प्रतिनिधि बन जाते हैं, तो ऐसे में वर्तमान व आने वाले समाज से नैतिकता, संस्कार व मूल्यों के सवाल पूछना, क्या बेमानी नहीं होगा? क्या हम शिक्षा द्वारा भावी पीढ़ी को सामाजिक, पारिवारिक एवं राष्ट्रीय दायित्वों से शिक्षित व दीक्षित कर पा रहे हैं? यदि नहीं, तो हमें शिक्षा के दायित्वों का नया क्षितिज खोजना होगा। उसकी संस्कृति में आये प्रदूषण के सवालों पर विचार करना होगा। शिक्षा जैसे अहम विषय को गैर अधिकारिक लोगों व पर्यावरणों के भरोसे नहीं छोड़ा जा सकता। जब तक शिक्षा को अच्छे, ईमानदार व उच्च आदर्श वाले शिक्षाविदों को सौंपा नहीं जाएगा, तब तक न समाज तरक्की कर पायेगा न देश।⁵

इसमें कोई संदेह नहीं है कि विकास की वर्तमान यात्रा में शिक्षा की भौतिक-संस्कृति का प्रसार के लिहाज़ से खूब विकास हुआ है, पर बात जहां गुणवत्ता, प्रतिफल, संस्कारों एवं मूल्यों की है, वहां पर वर्तमान शिक्षा-व्यवस्था पामाल नज़र आ रही है। गुणवत्ता के इस ज़माने में हमारे शिक्षा-संस्थान कहीं भी, कोई भी रैंकिंग प्राप्त नहीं कर पा रहे हैं और न ही शैक्षिक-संस्कृति की कोई उच्च ऊष्मा दे पा रहे हैं। ऐसे में शिक्षा की मौजूदा स्थिति राष्ट्रीय आपातकाल जैसी स्थिति की द्योतक नज़र आ रही है। योजना आयोग की एक रिपोर्ट के मुताबिक देश के 60 फीसदी विश्वविद्यालय एवं 80 फीसदी महाविद्यालयों के उत्तीर्ण छात्र "रोज़गार के लायक नहीं" है, क्यों कि उनके पास न तकनीकी कौशल है, न अभिव्यक्ति दक्षता है और न ही आवश्यक जीवन संस्कार है। ब्रितानी कम्पनी- क्वैक्वरेली साइमंड्स (क्यू.एस.) द्वारा 200 मूल्यवान शिक्षण संस्थानों की जारी सूची में हमारा एक भी गुरुकुल अपना स्थान नहीं बना पाया है। हाँ यह तथ्य भी सत्य है कि इस प्रकार की रैंकिंग व्यवस्था बाज़ारवाद व पूर्वाग्रह से पीड़ित होती है, पर यह तथ्य भी उतना ही सच है कि हमारे गुरुकुल आज केवल दाखिले, परीक्षा और डिग्रियाँ बांटने तक सीमित रह गये हैं। युनेस्को की रिपोर्ट के आंकड़ों के मुताबिक वैज्ञानिक अनुसंधान में भारत का हिस्सा मात्र 2.1 फीसदी है, जबकि पड़ोसी देश चीन का हिस्सा 14.7 फीसदी है।⁶

शैक्षिक-संस्कृति के पर्यावरण में आये प्रदूषण की एक बानगी इस प्रकार प्रत्यक्ष है कि आज विद्यालयों व महाविद्यालयों के साथ निजी विश्वविद्यालयों में प्रवेश को लेकर डोनेशन की कालाबज़ारी का होना जग जाहिर है। पुस्तकालय व नियमित कक्षाओं का स्थान अब रेडिमेड सीरिज ने लिया है। गवर्निंग व नियामक संस्थानों की असफलता व उनमें व्याप्त भ्रष्टाचार आज सबके सामने हैं। गुरुकुलों की जगह कॉचिंग-संस्थान अपनी जड़े जमा रहे हैं। निजी विद्यालयों में नॉन बोर्ड कक्षाओं में एक वर्ष पहले से ही बोर्ड की कक्षा का पाठ्यक्रम पढ़ाया जा रहा है। राष्ट्रीय अध्यापक शिक्षा परिषद की स्थापना

के बाद भी भारत में अध्यापक-शिक्षा संस्थानों की असहज दशा आज किसी से छुपी हुई नहीं है। छद्म अकादमिक पर्यावरण, जिसमें नकली थीसिस, नकल की हुई किताबों के साथ कट-पेस्ट का कारोबार केवल अंकों की दौड़ बढ़ा रहा है न कि गुणवत्ता। परीक्षा व मूल्यांकन प्रणालियों के मूल-दर्शन में आ रही गिरावट के साथ आज सत्रीय व प्रायोगिक परीक्षा के अंक निज स्वार्थों के चलते, शैक्षिक-भ्रष्टाचार के पर्याय व औपचारिकता मात्र रह गये हैं। कर्ज आधारित शिक्षा का बोलबाला बढ़ रहा है, अगर यह हालात सुधरे नहीं तो आने वाले भारत की युवा पीढ़ी बेरोज़गारी के साथ कर्ज का दंश भी झेलेगी। एसोचैम की हालिया रिपोर्ट के मुताबिक 20 संस्थान (जो आई.आई.एम. हैं) को छोड़कर, देश के 5500 एम.बी.ए. संस्थानों के केवल 7 फीसदी डिग्रीधारी ही नौकरी ले पा रहे हैं।⁷

शिक्षा में अपराध व हिंसा की बात तो सोच ही नहीं सकते, पर विगत कुछ दशकों से इस दिशा में भी शैक्षिक-मूल्य बिखरते नज़र आ रहे हैं। शिक्षा में शारीरिक, मनोवैज्ञानिक एवं जैडर हिंसा का होना तो आज आम बात हो गयी है, जिसके हजारों-हजार उदाहरण प्रत्यक्ष हैं। चौकाने वाला तथ्य यह है कि राष्ट्र विरोधी व आतंकवादी गतिविधियों में पकड़े जाने वाले नोजवान भी इंजीनियरिंग व अन्य उच्च डिग्रियों से सुशोभित हैं, जो एक चिन्ता का विषय व शैक्षिक-क्षेत्र की असफलता का द्योतक हैं। शिक्षा-व्यवस्थाओं का अपनी मूल संस्कृति व मूल्यों से दूर होने के कारण ही वर्तमान शिक्षा अधूरे व लंगड़े स्वरूप को वरण किए हुए हैं, जिसके कारण भावी पीढ़ी में शारीरिक व बौद्धिक विकास तो हो रहा है, लेकिन मानसिक व भावनात्मक विकास लगातार छूट रहा है, अर्थात् शिक्षा की अभौतिक-संस्कृति (विचार, आदर्श, मूल्य, भावना एवं विश्वास) के अनवरत क्षरण के चलते आज की शिक्षा अपने हितधारियों के दृष्टिकोण, व्यवहार एवं भावनाओं का परिष्कार नहीं कर पा रही है।⁸ दिल्ली से प्रकाशित प्रतिष्ठित पाक्षिक पत्रिका सरिता (1973) द्वारा दिल्ली विश्वविद्यालय व उसके संघटक कॉलेजों के अध्यापकों का सर्वे करवाया गया, जिसमें पाया गया कि अधिकांश अध्यापक अपना उत्तरदायित्व एवं प्रतिबद्धता लेश मात्र भी अनुभव नहीं करते, इसकी पुष्टि एसोसिएशन ऑफ इण्डियन युनिवर्सिटीज (1980) द्वारा कराये गये अध्ययन से भी होती है, जिसमें यह कहा गया है कि शैक्षिक अपराध व हिंसा की घटनाएं न हो, इसके लिए सर्वप्रथम स्वयं शिक्षा व उससे संबंधित लोगों को मूल्यपरक होना होगा।⁹

निष्कर्ष

जब सवाल शिक्षा की भूमिकाओं का है, तब पहले यह अपेक्षा बनती है कि वह स्वयं मूल्यवान है कि नहीं, उसमें भूमिकाओं को रेखांकित करने व निभाने की ऊष्मा है कि नहीं। शैक्षिक-संस्कृति के वर्तमान परिदृश्य को अवलोकित करने के बाद यह तो सिद्ध है कि मूल्यों की गिरावट के असर से शिक्षा का क्षेत्र भी अछूता नहीं है। ऐसे में शिक्षा से यह उम्मीद बनती है कि वह अपने दायित्वों को नये सिरे से परिभाषित करे तथा स्वयं की प्रकाश-ऊर्जा को इतना आलोकित करे कि विकास, परिष्कार, संवर्द्धन एवं परिवर्तन करने संबंधी सभी मानवीय-संकट क्षण भर में दूर हो जाए। शैक्षिक-संस्कृति में मौलिकता,

मानक, मूल्य, सम्यक् निर्णय की क्षमता जैसे घटक महत्वपूर्ण पक्ष हैं, अतः शिक्षा-विमर्श में उसके स्वयं के सबलीकरण के प्रावधान स्वतः भाव में गढ़ने चाहिए, ताकि सशक्त-शिक्षा बतौर-ए-साधन अपनी भूमिकाएं निर्बाध रूप से निभा सके। मूल्य के तौर पर शिक्षा एक सकारात्मक व शुभ पद है, जो सदैव उत्थान व भलाई के लिए ही बना है, परन्तु शिक्षा स्वभावगत संचालन व व्यवस्थाओं की दासी है, इसलिए इसमें आई विसंगतियाँ व बुराइयों के लिए वह जिम्मेदार नहीं है, यदि कोई जिम्मेदार है, तो वह है, उसके पैरोकार एवं उससे सरोकार रखने वाले पक्ष। शिक्षा तो एक साधन है, और साधन की शुद्धता निर्भर करती है, उसे प्रयोग करने वाले समाज की शुद्धता पर, अतः स्पष्ट है कि समाज व शिक्षा दोनों की संस्कृतियाँ अपनी उच्चता व शुभता के लिए आपस में अन्योन्याश्रित संबंध रखती हैं। किसी एक संस्कृति का रिसाव दूसरे के लिए नासूर बन जाता है, अतः समय की मांग व विकास का दर्शन, दोनों में रिसाव रहित पर्यावरण की प्रबल मांग करता है। इस संबंध में शैक्षिक-मूल्यों के सुप्रसिद्ध चिंतक श्रीप्रकाश का यह कथन समीचीन व निर्णायक है— शिक्षा वैचारिक मानकों और मूल्यों के विकास साधन है, जो देशकाल की सरहदों से परे किसी विशेष व मानकोनुकूल विचारधारा के प्रसार के लिए इस्तेमाल किया जाता है। इसलिए शिक्षा पर जैसे वैचारिक तत्व हावी होंगे तो शिक्षा की अंतःवस्तु, उसकी व्याप्ति तथा उसे देने और पाने की विधियाँ भी वैसी ही हो जाएगी।¹⁰

संदर्भ –

1. "शिक्षा के सामाजिक सरोकारों के समक्ष चुनौती", समागम, मीडिया एवं सिनेमा की द्विभाषी शोध पत्रिका, वर्ष-12, अंक-02, मार्च-2012, भोपाल, म.प्र., पृ.सं. 1-2.
2. दैनिक भास्कर राजस्थान संस्करण में "हरान और परेशान युवा पीढ़ी" शीर्षक पर मृणाल पाण्डे के सम्पादकीय आलेख से उद्धरित, वर्ष-2013.
3. संस्कृति के मायनों का S.bharatdiscovery.org से उद्धरित किया गया है।
4. जीवन-व्यवस्था के प्रतिमानों को नव.2011 की अखण्ड ज्योति मासिक पत्रिका के अंक 11 से उद्धरित किया गया है।
5. पंवार जगदीश के शोधपरक आलेख "मध्यवर्ग में उच्च-शिक्षा का संकट", सरिता फरवरी (प्रथम) 2014, अंक 1411 के पृ.सं. 27-28 से उद्धरित।
6. भारतीय जन संचार संस्थान, नई दिल्ली के एसोशिएट प्रोफेसर आनंद प्रधान की दैनिक भास्कर-2014 में प्रकाशित पड़ताल "दृष्टिक्रम में फंसती उच्च-शिक्षा से उद्धरित।
7. मैकगिल विश्वविद्यालय के रिसर्च फ़ैलो व बिट्स गोवा के पी.पुष्कर का 3 अगस्त 2016 की राजस्थान पत्रिका में प्रकाशित सम्पादकीय आलेख "डिग्री के लिए कर्ज तले दबता युवा" से उद्धरित।
8. आचार्य महाप्रज्ञ की पुस्तक "जीवन-विज्ञान: शिक्षा का नया आयाम", मार्च 2016 के पृ.सं. 3 से उद्धरित।

9. काशी हिन्दु विश्वविद्यालय के कुमार और मेहता के शोध-पत्र "विद्यालय हिंसा बनाम नैतिक मूल्य-मुद्दे एवं चुनौतियाँ (भारतीय संदर्भ में)", जो कि एन.सी.ई.आर.टी. के मुखपत्र भारतीय आधुनिक शिक्षा अक्टूबर-2013 में प्रकाशित, से उद्धरित, पृ.सं. 23-29.
10. वरिष्ठ अध्येता श्रीप्रकाश का, परिप्रेक्ष्य, न्यूपा नई दिल्ली के अप्रैल 1995 में प्रकाशित आलेख, "मूल्य और शिक्षा: अवधारणा, आवश्यकता और व्याप्ति" से उद्धरित, पृ.सं. 15.

* डॉ. जितेन्द्र लोढा C/o श्री राजेन्द्र पारीक
प्लॉट नं. 1 व 2, वार्ड नं. 8, केशव नगर,
चौमूं, जिला जयपुर, (राज.) मो. 09414401756
ई-मेल - drjitendralodha@gmail.com, dr.jitendrlodha@yahoo.com